कितना अच्छा होता कि मर्द भी रो लेते कभी खुलकर

पत्रकार-कवि फिरोज खान की कविता

यूँ होता...
फिल्मों की तरह
जिन्दगी में भी होता कोई इंटरवल
सुस्ताते कुछ देर

जिन्दगी के सिनेमाहॉल से निकलकर बाहर
दालान में बैठते किसी अजनबी की मुस्कुराहट को जज़्ब करते हुए
निकल जाते कुछ देर को समंदर के किनारे
आती हुई लहरों को देखते
डूबते सूरज की तरफ जाते परिंदों को सलाम कहते
या कि उनके साथ परवाज करते
पहुँच जाते सरहदों के पार
न पासपोर्ट, न वीजा की होती दरकार
न सियासत रोकती लाहौर की गलियों में घूमने से
लेनिन की शीशे की कब्र के सामने बैठे रहते
लाल चौक पर गाते प्रेमगीत
किसी शिकारे में किसी पंडत से सुनते कव्वाली
कोई नमाजी लौटकर आता मस्जिद से और रामलीला में निभाता लक्ष्मण का किरदार

मैं नास्तिक ही रहता
और चूम लेता किसी नमाजी का माथा
किसी पुजारी के हाथ चूमता और खेलता कोई खेल नींद आने तकज्.

मर्द रोते नहीं हैं
मर्द रोते नहीं हैं
मूंछों पर ताव देते हुए यही कहते थे दादा
दादी के इंतकाल के बाद जब रो रही थीं घर की औरतें
और नहीं रोक पाया था मैं भी खुद को
गमगीन दादा तब भी यही बोले थे
मर्द बच्चे हो तुम
मर्द रोते नहीं हैं

गांवभर का यही किस्सा था
किसी मर्द की आंखों में भूले से भी नहीं आते थे आंसू
और गर ऐसा हो गया तो
तो मर्दों की बिरादरी से बाहर कर दिया जाता था वह आदमी
क्योंकि मर्द रोते नहीं हैं

कुछ ऐसी ही कहानी उस औरत की होती थी
जो नहीं रोती थी
गांव में किसी के भी मर जाने पर
पति के बीमार होने या बच्चे के ठोकर खाकर गिरने पर
गांवभर के आंसू उधार होते थे उस औरत पर

औरत की आंख के गहने होते हैं आंसू
मर्द रोते नहीं हैं
दादा के साथ गांवभर के लोग यही मानते थे
फौलादी होते हैं मर्दों के सीने
चिंगारी निकलती है आंखों से उनकी

पिता, भाई और दोस्तों को फख्र है अपने गांव पर
गांव की मर्दानगी पर
सीने में धधकती आग पर
फख्र है कि मर्द रोते नहीं हैं
वे रोते नहीं हैं तब भी जब मर रही होती है वह औरत
जिसने जिंदगीभर किया था उन्हें प्यार

बहन ससुराल से आती है तो मां की आंखें गीली हो जाती हैं
उसका हिलक-हिलक कर रोना सुनकर
मां धीरे से कहती है उससे
जी भर कर रो ले
रोने से जी हल्का हो जाता है

एक दिन मैंने पूछ ही लिया रीना से
औरतों का जी भारी क्यों हो जाता है
मुस्कुराते हुए उन्होंने बस इतना कहा
मर्द नहीं समझ पाएंगे
औरतों का जी औरत होकर ही समझा जा सकता है

बहुत बाद में एक दिन
रीना ने कहा था
मर्द रोते नहीं हैं
उनके सीने की आग
सुखा देती है आंखों का पानी
औरत अपनी आग से चूल्हा जलाती है
और आंखों के समंदर से
मुहब्बत के दिए

कितना अच्छा होता कि मर्द भी रो लेते कभी खुलकर
बचा लेते आग अपनी और कोई चूल्हा जलाते वे

प्रज्ञा और भाजपा

साध्वी प्रज्ञा का नाम मैंने पहली बार 2010 के आसपास सुना था कि वो बम ब्लास्ट केस में हैं। कांग्रेस उन पर जुल्म कर रही है।

2013-14 में लोकसभा चुनाव के नजदीक उनको लेकर बहुत पोस्ट पढ़ीं की कांग्रेस उनको हिन्दू होने की सज़ा दे रही है। लोग बता रहे थे कि गांधी परिवार मुस्लिम है। गयासुद्दीन नाम बताया था।

पोस्ट में लिखा था कि प्रज्ञा के साथ जेल में वैश्या से भी बुरा व्यवहार किया जा रहा है। उनके पैर खत्म कर दिए हैं। अब वो जिंदगी भर नहीं चल पाएगी। पुलिस वाले उसके जिस्म से खेल रहे हैं।

हिन्दुओं जागो। अपने साधू साध्वी की रक्षा करो। मोदी सरकार लाओ देश को मुस्लिमो से बचाओ। मैंने भी दो बार वैसी पोस्ट शेयर की थी।

कल साध्वी प्रज्ञा की फोटो देखी। वो बिल्कुल तंदुरुस्त थी। मतलब जो पहले बताया गया था वो सब झूठ था जिसको एक सोची समझी रणनीति के तहत फैलाया गया था। ऐसी एक दूसरी पोस्ट जो मैंने शेयर की थी वो थी कि ऑस्ट्रेलिया की प्रधानमंत्री जूलिया गिलार्ड ने 24 घंटे में मुस्लिमों को अपना देश छोड़ने का आदेश जारी किया है। ये पोस्ट देखकर ऑस्ट्रेलिया मेलबर्न में रह रहे बड़े भाई ने मुझे कहा मलिक मुझे तुमसे ये उम्मीद नहीं थी। फेक खबर को मत फैलाया करो। उसके बाद ऐसी किसी भी तरह की खबर से दूरी बना ली। दूसरों का लिखा शेयर करना लगभग बंद कर दिया खासकर हिन्दू मुस्लिम से सम्बन्धित। – **मलिक**

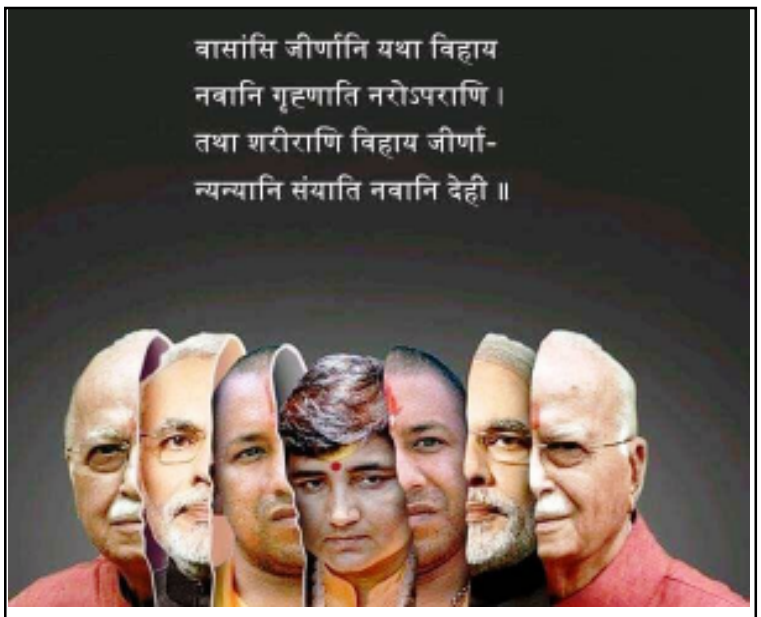

प्रज्ञा ठाकुर को प्रत्याशी बनाने के बाद अब बस गोडसे को चुनाव-प्रतीक घोषित करने की देर है!

बनिया मोदी

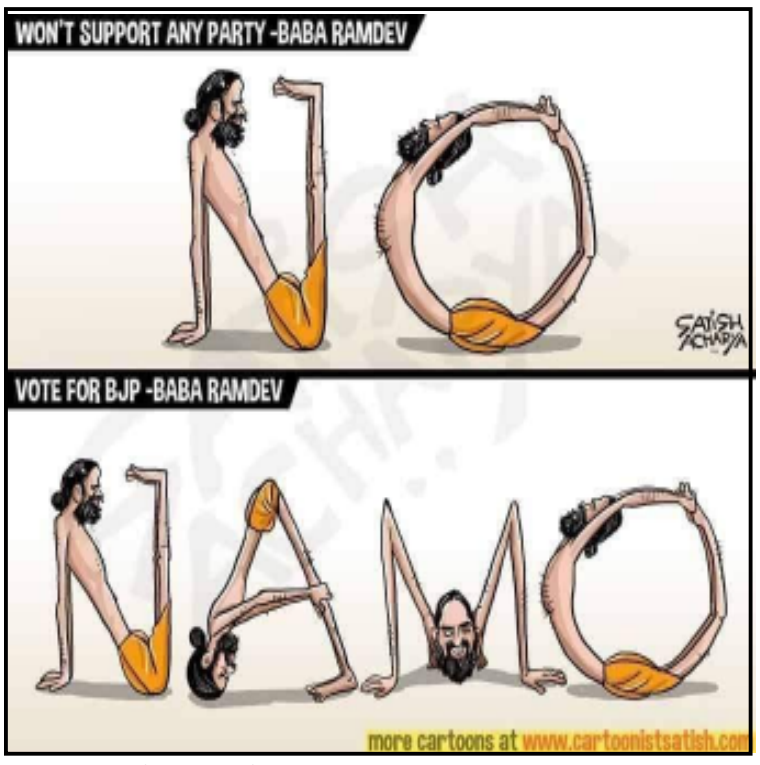

करनाल में, शायद पूरे हरियाणा में सर्राफों को सुनारे (पंजाबी डाइल्केट) या सुनार ही कहे जाने का चलन है। अमूमन, सर्राफ बनिये होते हैं। मतलब आभूषणों के कारीगर नहीं होते लेकिन आभूषणों के व्यापारी होते हैं और साथ में गिरवी, ब्याज-बट्टे का काम भी करते हैं।

मुज़फ़्फ़रनगर में तो रिवाज़ यही था कि बनिया भले ही जेवरों की छोटी-मोटी दुकान किए बैठा है, वह सर्राफ ही कहलाता था या फिर सीधे बनिया। मतलब, सोने का काम करने की वजह से उसे सुनार नहीं कहा जाता था। बल्कि, सोने के आभूषणों का व्यापार ज़्यादातर बनियों के पास ही था। अभी भी उनके पास ही होगा। मुज़फ़्फ़रनगर के लोहिया बाज़ार में जहां मैं पैदा हुआ था और गांव में पलने-बढ़ने के बाद जहां अपने सबसे हसीन आबाद-बर्बाद दिन गुज़रे, वहां क्कबड़ी दुकानक्क सर्राफ की दुकान ही थी। वैश्य परिवार के ही पूर्व विधायक विष्णु स्वरूप और पूर्व मंत्री चितरंजन स्वरूप की।

मतलब, बनिया चाहे काम सुनार वाला करे या धोबी वाला या जूते वाला वह तो बनिया ही रहेगा। उसके पास पैसा है, बिजनेस की प्रैक्टिस है, जिन जातियों के साथ हिंदुस्तान में पेशे बंधे हैं और वे पिछड़े-दलित हैं, उनके पेशे के काम भी वो उनके ही श्रम के बूते और फिर मशीनों के बूते करेगा तो भी बनिया ही रहेगा। जैसे करनाल का जूता व्यापारी बनिया लिबर्टी का मालिक होकर मोची नहीं हो गया।

मुज़फ़्फ़रनगर के ही अपने ज्ञान के हिसाब से कहूं तो सुनार तो सुनार ही रहेगा, वह काम बढ़ाकर सर्राफ भी बन जाए तो भी वो बनिया नहीं हो जाएगा। करनाल में हालांकि एक कन्फ्यूजन था। वहां जब सर्राफे के कुछ व्यापारी नेताओं को सुनारे कहा जाता था तो मैं भ्रम में पड़ जाता था कि ये सर्राफ बनिये हैं, सवर्ण पंजाबी हैं या सुनार हैं। फिर पता चला कि यहां सर्राफ के तौर पर सुनार शब्द का ही इस्तेमाल होता है। इसका मतलब ये नहीं है कि सर्राफे के काम में लगे बनियों, सवर्ण पंजाबियों और जाति से सुनारों के बीच कोई घालमेल हो गया हो या आपस में ब्याह-शादियां होने लगी हों, जाति के भेद टूट गए हों। ना जी, सुनारे चाहे किसी को कह लो, बनिया तो बनिया ही है और सुनार, सुनार ही। संघी समरसता जैसा मसला कि समरसता खेल लो पर रहो वही जो बताए-बनाए गए हो।

सुनार ओबीसी में आते हैं। ओबीसी के लिए जो बची-खुची सरकारी नीतियां हैं, उनका लाभ लेते हैं लेकिन ओबीसी चेतना कभी जाहिर नहीं करते हैं। मोटा मसला यह है कि वे व्यापारियों के साथ रहते हैं। उन्हें एक छोटी जाति होने का अहसास भी करा दिया जाता पर बहुत सारी दलित और अति पिछड़ी जातियों की तरह उन्हें छुआछूत का शिकार नहीं होना पड़ा है। यह भी एक प्रीविलेज है जो ओबीसी होने के बावजूद किसी ओबीसी को शूद्र विरोधी मानसिकता के साथ जीने की सहूलियत दे सकता है।

बाकी ये सब हैं विडंबनाएं ही। प्रीविलेज तो असल में हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के पास है जो खून में व्यापार होने का ऐलान करते हैं और अडानी-अंबानी जैसे व्यापारिक घरानों के विघ्न-विनाशक बने रहते हैं। उनकी सरकार दलितों और पिछड़ों के हक-हुकूक पर बुल्डोजर चलाती जाती है। और जब उनका मन करता है, वे कहते हैं, भाइयो-बैनो, मुझे पिछड़ा होने की वजह से सताया जा रहा है। – धीरेश सैनी

व्यंग्य
मटर-पनीर में तालमेल

विवाह आदि कार्यक्रमों में मटर-पनीर की सब्जी बहुत आम है...लेकिन मटर-पनीर की सब्जी में मटर और पनीर के बीच आपसी तालमेल हो, यह जरूरी नहीं। बहुत बार मटर, पनीर में होते हुए भी पनीर से खफ़ा-खफ़ा सा जुदा-जुदा सा रहता है.. दो तीन तरह की बेमेल सब्जी के गठबंधन से बनीं सब्जियां, लजीज बनें. देखने में एकसार लगें. एक के जिस्म की शिनाख्त दूसरे के जिस्म से हो..तो इसके लिए जरूरी है कि सब्जी, अच्छी शोहबत में पकायी जाये. मिलन की कुछ शर्तों को निभाया जाये. वक्त के नजाकत को समझा जाये. हर सब्जी को उसकी औकात के हिसाब से ही मिलाया, तपाया, दबाया और घुमाया जाये. यह नहीं कि कढ़ाई में मटर पनीर झोंक...और लगे कलछुल पटकने.

दरअसल होता यूं है कि जब तक ऐसी सब्जी कड़ाही या डोंगे में होती हैं तो देखने और सुगंध लेने वालों को गुमराह कर जातीं हैं..लेकिन जब वही सब्जी कलछुल के गिरफ्त से छूटकर थाली में उतरती है तो मटर, पनीर का हाथ झटक थाली के तटबंधों पर लग जाता है.. उधर पनीर ठगे हुए दुल्हे की तरह जयमाला की कुर्सी पर बैठा पाया जाता है. और हाँ! एक बचा बिना जनाधार का शोरबा! वो बेचारा पूरे थाली में दौड़-दौड़कर फैल-फैलकर पनीर और मटर के बीच एक अंडर करंट पैदा करने की कोशिश और गुजारिश करता है.

– रिवेश प्रताप सिंह